शोध परिधि ISSN-2349-95

साहित्य, कला, संस्कृति, मानविकी एवं समाज विज्ञान की
द्विभाषिक षट्मासिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका

भीष्म साहनी और अमरकांत की कहानियों में जनवाद

DR. MINTU

डॉ.
असि.प्रो.
कु0मायावती राज0 महिला स्नातकोत्तर, महाविद्यालय,

शोध सारांश

हिन्दी साहित्य में जनवाद की अवधारणा नई नहीं है। प्रकाशचन्द्र गुप्त ने सन् 1953 में पुस्तक 'हिन्दी साहित्य की जनवादी परम्परा' में कबीर से शुरू करके सारे मध्यकालीन कवि प्रेमचन्द तक के साहित्य में इस जनवाद की खोज और रेखांकन का कार्य किया था। प्रगतिशील संघ की स्थापना के पूर्व भी हिन्दी साहित्य में प्रगतिवाद मौजूद था। प्रेमचन्द, सूर्यकान्त त्रिपाठी आदि के साहित्य में उन तत्वों को देखा जा सकता है। इसी प्रकार जनवादी लेखक संघ की स्थापना भी हिन्दी में जनवाद मौजूद था। सातवें दशक में कांग्रेस की पराजय और जनता पार्टी की स्था व्यापक जन असंतोष और जन उभार का सीधा परिणाम था। राजनीति में एक नए प्रयोग के रूप में एकमात्र सार्थकता यह थी कि उन्होंने कांग्रेस के वर्चस्व को तोड़कर गैर कांग्रेसी राजनीति की सम्भ का अन्वेषण किया।

सन् 1664 में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के विभाजन का एक प्रमुख कारण कांग्रेसी सरकार सहयोग और समर्थन में भी निहित था। इसी नीति के कारण उससे सम्बद्ध साहित्यिक, सांस्कृतिक मंच लेखक संघ और जन नाट्य मंच आदि या तो अपनी क्रांतिकारी भूमिका खोकर निष्क्रिय हो चुके थे या इस पुरानी परिपाटी का निर्वहन कर रहे थे। दूसरी ओर समानान्तर कहानी जैसे आन्दोलन आम आदमी को संघर्षशील चेतना और वर्ग आधार की समूची अवधारणा को धुँधलाने की कोशिश कर रहे थे।

चन्द्रबली सिंह जनवाद को परिभाषित करते हुए कहते हैं – 'जनवाद एक व्यापक जनसमूह Poino है, दृष्टिकोण है, जिसमें कि राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग से लेकर किसान मजदूर सब आते हैं। उनके हुआ वह दृष्टिकोण है।'(1) वामपंथ, मार्क्सवाद और प्रगतिशील आदि शब्द समूह और अवधारणा करने वाला जनवाद का सही व्यापक आधार है। जो उसे किसाान मजदूर अर्थात् सर्वहारा की चिन्ता